कहानी

जीवन का शाप

कावसजी ने पत्र निकाला और यश कमाने लगे। शापूरजी ने रुई की दलाली शुरू की और धन कमाने लगे ? कमाई दोनों ही कर रहे थे, पर शापूरजी प्रसन्न थे; कावसजी विरक्त। शापूरजी को धन के साथ सम्मान और यश आप-ही-आप मिलता था। कावसजी को यश के साथ धन दूरबीन से देखने पर भी दिखायी न देता था; इसलिए शापूरजी के जीवन में शांति थी, सहृदयता थी, आशीर्वाद था, क्रीड़ा थी। कावसजी के जीवन में अशांति थी, कटुता थी, निराशा थी, उदासीनता थी। धन को तुच्छ समझने की वह बहुत चेष्टा करते थे; लेकिन प्रत्यक्ष को कैसे झुठला देते ? शापूरजी के घर में विराजने वाले सौजन्य और शांति के सामने उन्हें अपने घर के कलह और फूहड़पन से घृणा होती थी। मृदुभाषिणी मिसेज शापूर के सामने उन्हें अपनी गुलशन बानू संकीर्णता और ईर्ष्या का अवतार-सी लगती थी। शापूरजी घर में आते, तो शीरीं-बाई मृदु हास से उनका स्वागत करती। वह खुद दिन-भर के थके-माँदे घर आते तो गुलशन अपना दुखड़ा सुनाने बैठ जाती और उनको खूब फटकारें

बताती तुम भी अपने को आदमी कहते हो। मैं तो तुम्हें बैल समझती हूँ,बैल बड़ा मेहनती है, गरीब है, सन्तोषी है, माना लेकिन उसे विवाह करनेका क्या हक था ?

कावसजी से एक लाख बार यह प्रश्न किया जा चुका था कि जब तुम्हें समाचारपत्र निकालकर अपना जीवन बरबाद करना था, तो तुमने विवाह क्योंकिया ? क्यों मेरी जिन्दगी तबाह कर दी ? जब तुम्हारे घर में रोटियाँ न थीं, तो मुझे क्यों लाये ! इस प्रश्न का जवाब देने की कावसजी में शक्ति न थी। उन्हें कुछ सूझता ही न था। वह सचमुच अपनी गलती पर पछताते थे। एक बार बहुत तंग आकर उन्होंने कहा था,

'अच्छा भाई, अब तो जो होना था, हो चुका; लेकिन मैं तुम्हें बाँधे तो नहीं हूँ, तुम्हें जो पुरुष ज्यादा सुखी रख सके, उसके साथ जाकर रहो, अब मैं क्या कहूँ ? आमदनी नहीं बढ़ती, तो मैं क्या करूँ ? क्या चाहती हो, जान दे दूं ?'

इस पर गुलशन ने उनके दोनों कान पकड़कर जोर से ऐंठे और गालों पर दो तमाचे लगाये और पैनी आँखों से काटती हुई बोली, 'अच्छा, अब चोंच सँभालो, नहीं तो अच्छा न होगा। ऐसी बात मुँह से निकालते तुम्हें लाज नहीं आती। हयादार होते, तो चुल्लू भर पानी में डूब मरते। उस दूसरे पुरुष के महल में आग लगा दूंगी, उसका मुँह झुलस दूंगी। तब से बेचारे कावसजी के पास इस प्रश्न का कोई जवाब न रहा। कहाँ तो यह असन्तोष और विद्रोह की ज्वाला और कहाँ वह मधुरता और भद्रता की देवी शीरीं, जो कावसजी को देखते ही फूल की तरह खिल उठती, मीठी-मीठी बातें करती, चाय, मुरब्बे और फूलों से सत्कार करती और अक्सर उन्हें अपनी कार पर घर पहुँचा देती। कावसजी ने कभी मन में भी इसे स्वीकार करने का साहस नहीं किया; मगर उनके हृदय में यह लालसा छिपी हुई थी कि गुलशन की जगह शीरीं होती, तो उनका जीवन कितना गुलजार होता ! कभी-कभी गुलशन की कटूक्तियों से वह इतने दुखी हो जाते कि यमराज का आवाहन करते। घर उनके लिए कैदखाने से कम जान-लेवा न था और उन्हें जब अवसर मिलता, सीधे शीरीं के घर जाकर अपने दिल की जलन बुझा आते।

एक दिन कावसजी सबेरे गुलशन से झल्लाकर शापूरजी के टेरेस में पहुँचे, तो देखा शीरीं बानू की आँखें लाल हैं और चेहरा भभराया हुआ है, जैसे रोकर उठी हो। कावसजी ने चिन्तित होकर पूछा, 'आपका जी कैसा है, बुखार तो नहीं आ गया।'

शीरीं ने दर्द-भरी आँखों से देखकर रोनी आवाज से कहा, 'नहीं, बुखार तो नहीं है, कम-से-कम देह का बुखार तो नहीं है।' कावसजी इस पहेली का कुछ मतलब न समझे।

शीरीं ने एक क्षण मौन रहकर फिर कहा, 'आपको मैं अपना मित्र समझती हूँ मि. कावसजी ! आपसे क्या छिपाऊँ। मैं इस जीवन से तंग आ गयी हूँ। मैंने अब तक हृदय की आग हृदय में रखी; लेकिन ऐसा मालूम होता है कि अब उसे बाहर न निकालूँ, तो मेरी हड्डियाँ तक जल जायेंगी। इस वक्त आठ बजे हैं, लेकिन मेरे रंगीले पिया का कहीं पता नहीं। रात को खाना खाकर वह एक मित्र से मिलने का बहाना करके घर से निकले थे और अभी तक लौटकर नहीं आये। यह आज कोई नई बात नहीं है, इधर कई महीनों से यह इनकी रोज की आदत है। मैंने आज तक आपसे कभी अपना दर्द नहीं कहा,मगर उस समय भी, जब मैं हँस-हँसकर आपसे बातें करती थी, मेरी आत्मा रोती रहती थी।'

कावसजी ने निष्कपट भाव से कहा, 'तुमने पूछा, नहीं, कहाँ रह जाते हो ?'

'पूछने से क्या लोग अपने दिल की बातें बता दिया करते हैं ?'

'तुमसे तो उन्हें कोई भेद न रखना चाहिए।'

'घर में जी न लगे तो आदमी क्या करे ?'

'मुझे यह सुनकर आश्चर्य हो रहा है। तुम जैसी देवी जिस घर हो, वह स्वर्ग है। शापूरजी को तो अपना भाग्य सराहना चाहिए !'

'आपका यह भाव तभी तक है, जब तक आपके पास धन नहीं है। आज तुम्हें कहीं से दो-चार लाख रुपये मिल जायँ, तो तुम यों न रहोगे और तुम्हारे ये भाव बदल जायँगे। यही धन का सबसे बड़ा अभिशाप है। ऊपरी सुख-शांति के नीचे कितनी आग है, यह तो उसी वक्त खुलता है, जब ज्वालामुखी फट पड़ता है। वह समझते हैं, धन से घर भरकर उन्होंने मेरे लिए वह सबकुछ कर दिया जो उनका कर्तव्य था और अब मुझे असन्तुष्ट होने का कोई कारण नहीं। यह नहीं जानते कि ऐश के ये सामान उस तहखानों में गड़े हुए पदार्थों की तरह हैं, जो मृतात्मा के भोग के लिए रखे जाते थे।'

कावसजी आज एक नयी बात सुन रहे थे। उन्हें अब तक जीवन का जो अनुभव हुआ था, वह यह था कि स्त्री अन्तःकरण से विलासिनी होती है। उस पर लाख प्राण वारो, उसके लिए मर ही क्यों न मिटो, लेकिन व्यर्थ।

वह केवल खरहरा नहीं चाहती, उससे कहीं ज्यादा दाना और घास चाहती है। लेकिन एक यह देवी है, जो विलास की चीजों को तुच्छ समझती है और केवल मीठे स्नेह और सहवास से ही प्रसन्न रहना चाहती है। उनके मन में गुदगुदी-सी उठी।

मिसेज शापूर ने फिर कहा, उनका यह व्यापार मेरी बर्दाश्त के बाहर हो गया है, मि. कावसजी ! मेरे मन में विद्रोह की ज्वाला उठ रही है और मैं धर्मशास्त्र और मर्यादा इन सभी का आश्रय लेकर भी त्राण नहीं पाती !

मन को समझाती हूँ क्या संसार में लाखों विधवाएँ नहीं पड़ी हुई हैं; लेकिन किसी तरह चित्त नहीं शान्त होता। मुझे विश्वास आता जाता है कि वह मुझे मैदान में आने के लिए चुनौती दे रहे हैं। मैंने अब तक उनकी चुनौती नहीं ली है; लेकिन अब पानी सिर के ऊपर चढ़ गया है। और मैं किसी तिनके का सहारा ढूँढ़े बिना नहीं रह सकती। वह जो चाहते हैं, वह हो जायगा। आप उनके मित्र हैं, आपसे बन पड़े, तो उनको समझाइए। मैं इस मर्यादा की बेड़ी को अब और न पहन सकूँगी।% मि. कावसजी मन में भावी सुख का एक स्वर्ग निर्माण कर रहे थे।

बोले -'हाँ-हाँ, मैं अवश्य समझाऊँगा। यह तो मेरा धर्म है; लेकिन मुझे आशा नहीं कि मेरे समझाने का उन पर कोई असर हो। मैं तो दरिद्र हूँ, मेरे समझाने का उनकी दृष्टि में मूल्य ही क्या ?'

'यों वह मेरे ऊपर बड़ी कृपा रखते हैं बस, उनकी यही आदत मुझे पसन्द नहीं !'

'तुमने इतने दिनों बर्दाश्त किया, यही आश्चर्य है। कोई दूसरी औरत तो एक दिन न सहती।'

'थोड़ी-बहुत तो यह आदत सभी पुरुषों में होती है; लेकिन ऐसे पुरुषों की स्त्रियाँ भी वैसी ही होती हैं। कर्म से न सही, मन से ही सही। मैंने तो सदैव इनको अपना इष्टदेव समझा !'

'किन्तु जब पुरुष इसका अर्थ ही न समझे, तो क्या हो ? मुझे भय है, वह मन में कुछ और न सोच रहे हों।'

'और क्या सोच सकते हैं ?'

'आप अनुमान कर सकती हैं।'

'अच्छा, वह बात ! मगर मेरा अपराध ?'

'शेर और मेमनेवाली कथा आपने नहीं सुनी ?'

मिसेज शापूर एकाएक चुप हो गयीं। सामने से शापूरजी की कार आती दिखायी दी। उन्होंने कावसजी को ताकीद और विनय-भरी आँखों से देखा और दूसरे द्वार के कमरे से निकलकर अन्दर चली गयीं। मि. शापूर लाल आँखें किये कार से उतरे और मुस्कराकर कावसजी से हाथ मिलाया। स्त्री की आँखें भी लाल थीं, पति की आँखें भी लाल। एक रुदन से, दूसरी रात की खुमारी से। शापूरजी ने हैट उतारकर खूँटी पर लटकाते हुए कहा, 'क्षमा कीजिएगा, मैं रात को एक मित्र के घर सो गया था। दावत थी। खाने में देर हुई, तो मैंने सोचा अब कौन घर जाय।'

कावसजी ने व्यंग्य मुस्कान के साथ कहा, 'किसके यहाँ दावत थी। मेरे रिपोर्टर ने तो कोई खबर नहीं दी। जरा मुझे नोट करा दीजिए।' उन्होंने जेब से नोटबुक निकाली।

शापूरजी ने सतर्क होकर कहा, 'ऐसी कोई बड़ी दावत नहीं थी जी,दो-चार मित्रों का प्रीतिभोज था।'

'फिर भी समाचार तो जानना चाहिए। जिस प्रीतिभोज में आप-जैसे प्रतिष्ठित लोग शरीक हों, वह साधारण बात नहीं हो सकती। क्या नाम है मेजबान साहब का ?'

'आप चौंकेंगे तो नहीं ?'

'बताइए तो।'

'मिस गौहर !'

'मिस गौहर !!'

'जी हाँ, आप चौंके क्यों ? क्या आप इसे तस्लीम नहीं करते कि दिन-भर पये-आने-पाई से सिर मारने के बाद मुझे कुछ मनोरंजन करने का भी अधिकार है, नहीं तो जीवन भार हो जाय।'

'मैं इसे नहीं मानता।'

'क्यों ?'